International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 6; November 2017; Page No. 49-52

आजीवक मत : एक उपेक्षित भारतीय दर्शन

विश्वम्भर नाथ प्रजापति
शोधार्थी, विज्ञान नीति अध्ययन केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, दिल्ली, भारत।

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन में दो तरह की पद्धतियाँ हैं जो एक दूसरे के समानांतर सदैव चलती रहीं हैं । एक पद्धति को रुढ़िवादी तो दुसरे को अपरम्परागत नास्तिक पद्धति माना गया है। वैसे तो प्राचीन भारत में हजारो मत प्रचलित थे, लेकिन कुछ मतों ने व्यापक रूप से लोगों को प्रभावित किया। रुढ़िवादी पद्धति में सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा (वेदांत) जबकि अरुढ़िवादी नास्तिक मतों में जैन, बौद्ध और लोकायत प्रमुख हैं। रुढ़िवादी मतों ने अपने आपको वेदों से जोड़ा और वेदों की सत्ता को स्वीकार किया, वे आस्तिक मत कहलायें। उन विचारो ने जिन्होंने वेदों की सत्ता को नकार दिया या वेदों को महत्तवहीन माना वे मत नास्तिक मत कहलायें । ईश्वर में विश्वास या अविश्वास एक अलग मुद्दा था (चट्टोपाध्याय, 2012:16) । आस्तिक और नास्तिक के अर्थ में परिवर्तन भी आता रहा है। लेकिन अरुढ़िवादी नास्तिक मतों में एक और भी महत्तवपूर्ण मत था : आजीवक । आश्चर्यजनक रूप से इतिहासकारों और दार्शनिको ने आजीवकों के अलावा अन्य मतों का पर्याप्त वर्णन किया है। यहाँ तक की निन्दा करने के लिए भी बहुत सारे विचारकों ने नास्तिक मतों का वर्णन किया । लेकिन इन सब वर्णनों में अगर किसी को समुचित स्थान नहीं मिला तो वह है अजीवकों का मत। इस लेख में आजीवकों के महत्तवपूर्ण विचारों पर प्रकाश डालने की कोशिश की गयी है। भारत में आजीवकों के उद्भव के किस तरह के सामाजिक,राजनैतिक औए आर्थिक कारक रहें है वह भी समझने का प्रयास किया गया है तथा भारतीय समाज में नियतिवाद के महत्त्व को भी रेखांकित किया गया है।

सामञ्ञफल सुत्त के सन्दर्भ से बुद्ध के समकालीन छः नास्तिक दार्शनिकों (तित्थिय) की जानकारी मिलती है : पूर्ण कस्सप, मक्खलि गोसाल, अजित केशकम्बली, पकुध कच्चायन, संजय बेलत्थिपुत्त और निगंथ नाथपुत्त (बरुआ, 1921, बाशम, 1951, चट्टोपाध्याय, 2013)। यह अंतिम नाम जैन धर्म के संस्थापक महावीर का था। पाली भाषा में तित्थिय का आशय बौधेत्तर मत के संस्थापकों से है । इसमें से तीन ज्ञानियों पूरण, मक्खलि और पकुध को आजीविका सम्प्रदाय से सम्बंधित माना जाता है। आजीवक शब्द आजीव से बना जिसका अर्थ है जीविका का साधन है। इस प्रकार आजीवक का अर्थ हुआ जीविका के लिए श्रम करने वाला समुदाय। आजिवकों का सम्बन्ध निर्वस्त्र रहने वालें सन्यासियों से जोड़ा जाता है जो की वैदिक परम्परा के विरुद्ध एक श्रमण आन्दोलन था। एक तरफ जहां रुढ़िवादी मत ब्राह्मण परंपरा की देन थें तो दूसरी तरफ अरुढ़िवादी नास्तिक मत श्रमण परम्परा की देन थें। आजीवक दर्शन का सारतत्व भाग्य था, जिसे सामान्यतः नियति कहा जाता था। आजीवकों का निश्चयवाद परमाणुवाद के साथ आया जो कि गंगा घाटी में सभ्यताओं के विकास से जोड़कर देखा गया जबकि उस वक़्त राजनैतिक सता का तेजी से केन्द्रीकरण भी हो रहा था (बाशम, 1951:4)। लेकिन ऐसा नहीं है की निश्चयात्मक सिद्धांत केवल आजीवकों का ही मूल सिद्धांत रहा है बल्कि अन्य दार्शनिक मतों में भी निश्च्यात्मक सिद्धांतो का वर्णन मिलता है । जैसे की वैशेषिक दर्शन, अनुभव को ही एकमात्र ज्ञान का स्रोत मानता है। परमाणुओं को ही सारे पदार्थो का मूल मानता है। शशिप्रभा (2012) के अनुसार " न्याय-वैशेषिक दार्शनिक कट्टर वस्तुवादी है तथा अनुभव की यथार्थता में उसे दृढ़ विश्वास है "। यानी कि अनुभव को ही एकमात्र प्रमाण के तौर पर स्वीकार कर करता है। इस आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि न्याय-वैशेषिक में भी निश्चयवादी सिद्धांतो के तत्व मौजूद थें।

आजीवकों का नियतिवाद

'सामञ्ञफल सुत्त' में उपरोक्त दार्शनिकों के विश्व दृष्टिकोण परिलक्षित होते है। पूरण कस्सप अहेतुवाद/ अक्रियवाद में विश्वास रखते थे। इस वाद के अनुसार किसी भी घटना की व्याख्या किसी तर्क संगत कारन को लेकर नहीं की जा सकती और मानव प्रयास बेकार/व्यर्थ है। इस प्रकार के दर्शन में ऐसे संसार को प्रतिबिंबित किया गया है जो दार्शनिको के लिए पूर्णतया औचित्याविहीन था क्योंकि उसका मानना था कि उदारता, आत्म-नियंत्रण, संयम, और सत्य भाषण से न ही कोई गुण और न ही कोई अवगुण आता हैं । जबकि पकुध के आदिम विश्व दृष्टिकोण में स्पष्ट रूप से भौतिकवादी झुकाव है। पकुध को प्रत्येक बात

में बाँझपन दिखाई देता था। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सुख, दुःख, जीवन ये सातों उसे निरर्थक दिखाई दिए और उसने उन्हें अपरिवर्तनीय 'पर्वत की भांति दृढ और स्तम्भ की भांति स्थिर माना'। उसने जिन सात त्तवों की बात की वे ठोस भौतिक और लैकिक हैं इनका अलौकीकता के साथ सम्बन्ध नहीं दिखता है । आजीवकों ने प्रत्येक मानवीय प्रयास को औचित्यविहीन मानते नियति को ही सर्वोच्च मान लिया । मक्खलि गोसाल आजीवक मत के अंतिम तीर्थंकर थें (बरुआ, 1921 : 297) । जैन स्रोत ' भगवती सूत्र' से पता चलता है कि गोसाल और महावीर कई वर्षो तक साथ रहें। जैन ग्रंथो में कहा गया है कि गोसाल कुछ व्यक्तिगत स्वार्थो के चलते महावीर से अलग हुए। किन्तु गोसाल के अंतिम दिनों के सम्बन्ध में उपलबध सूचना से विदित होता है कि वास्तविक कारण कुछ और है । गोसाल ने देखा कि जीवन असह्य है और यहाँ तक की महावीर की धार्मिक प्रणाली से भी कोई संतोष नहीं मिल रहा है (चट्टोपाध्याय, 2013:413) । मक्खलि गोसाल के अनुसार वह व्यक्ति स्वयं और न ही कोई दूसरा, न ही मानवीय क्रिया, न ही शक्ति, न ही साहस, न ही मानवीय धैर्य या मानवीय कौशल है जो कि किसी के नियति को प्रभावित कर सके। सभी जीव जो की श्वांस लेते हैं, पैदा हुए हैं, जिनके पास जीवन है, वह सभी बिना शक्ति के हैं तथा बल या गुण नियति, संगति (अवसर) और प्रकृति /स्वभाव द्वारा विकसित हैं एवं सुख और दुःख के छः श्रेणियों (के अस्तित्व) अनुभव करते है (बाशम,1951:4) । बौद्ध और जैन स्रोत इस बात पर सहमत होते हैं कि गोसाल कट्टर नियतिवादी था जिसने नियति को विश्व का प्रेरक तत्त्व और सभी परिवर्तनों को एकमात्र कारक के स्तर तक पहुंचा दिया । उसके विचार में स्वत्रन्त्र इच्छा में विश्वास महत्तवहीन था । उसका मानना था कि सबल और साहसी व्यक्ति भी दुर्बल, निट्ठले और भीरु व्यक्ति की भांति उसी एक सिद्धांत के पूर्ण नियंत्रण में है जो समस्त संसार का संचालन करता है। जिस प्रकार सूत के गोले फेकने पर वह पूरा खुल जाता है उसी प्रकार मुर्ख और ज्ञानी दोनों ही अपने पथ पर चलते दुःख का अंत कर देंगे (वही पृ. 224-5) ।

चट्टोपाध्याय (2013:415) तर्क देते है कि गोसाल एक भविष्यदृष्टा और दार्शनिक के तौर उस समय के हो रहे बदलाव को समझते हुए एक विश्व दृष्टिकोण विकसित करना चाहते थे । नवोदित राजसत्ताओं की भीषण शक्ति द्वारा जनजातियों का हास होना, ऐसे सामजिक परिवर्तन थे जिनका औचित्य उस युग के महानतम विचारकों के समझ से भी बाहर था । यही परिस्थितयां थी जो गोसाल के लिए घातक बंधन बन रही थी। और यही अनुभव बुद्ध ने भी किया. बुद्ध अपने युग के सर्वाधिक सुसंगत व्यामोह उत्पन्न करने के कार्य में रत हो गए । जबकि गोसाल यथार्थ से जूझने और ऐतिहासिक बन्धनों को तोड़ने का प्रयास करते रहे। वह अपने युग के सबसे बड़े ऐतिहासिक परिवर्तन अर्थात जनजातीय व्यवस्था के पतन और राजसत्ता द्वारा प्रदत्त नए मूल्यों के उदय को समझना चाहते थे और वह इस कार्य में विफल हो गए । उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो संसार का संचालन कोई बहुत बड़ी, प्रचंड, अथाह और अज्ञात शक्ति कर रही है जिसे हम नहीं जानते, वह शक्ति थी भाग्य। यही उनकी नियति का दर्शन था।

अवलोकन और विश्लेषण

पांचवी-छठी शताब्दी ईसा पूर्व उत्तर भारत में कई बड़े राज्यों का उद्भव हो रहा था जिसमे की कोसल और मगध सबसे बड़े राज्य थें । उसी वक्त तीन दार्शनिक मत जैन, बौद्ध और आजीवक पूरे उत्तर भारत को प्रभावित कर रहे थे। मार्क्सवादी दार्शनिक देबी प्रसाद चट्टोपाध्याय का भी मानना है की मगध और कोसल जैसे बड़े साम्राज्य छोटे जनजातीय गणराज्यों के लिए खतरे थे। इन मतों की उत्तपति को समझने के लिए एक नज़र उस समय के सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तनों को ऐतिहासिक रूप से रेखांकित करना आवश्यक है । बाशम (1951:8) बताते हैं कि आखिर आजीवकों का ममूलभूत सिद्धांत नियति पर क्यों आ जाता है। उस वक्त में प्राकृतिक आपदा जैसी की बाढ़, सुखा, अकाल और महामारी समय-समय पर इतने व्यापक स्तर पर आयें कि मनुष्य के प्रयत्न इनसे बचने के लिए नाकाम रहें। आजीवक संप्रदाय का मूल वाक्य था " मानवीय प्रयत्न प्रभावहीन हैं" ('नत्थि पुरिस्कारे'), अकारथ है, इतना व्यापक रूप से प्रसारित हो गया कि गंगा के समतल भूभागों के लोगो के होठों पर मुसीबतों के वक्त होता है।

आजीवकों का मानना है कि सभी जीव "नियति, संगती और भाव से विकसित" होते है. सांख्य दर्शन यह कथन स्वीकार करता है कि उन्नति और अवसर प्राकृतिक नियमो से आबद्ध है। बाशम 'सामञ्ञफल सुत्त' के पद नियति-संगति-भाव-परिणिति को संदेहास्पद और अस्पष्ट मानते है. आजीवक सबसे ऊपर नियति को रखते हैं जो सब कुछ नियत्रित करता है।

नियति- आजिवकों ने अपने तात्विक सिद्धांतों में नियति को सर्वोपरि स्थान दिया तथा संगति और भाव को गौण स्थान प्रदान किया । हालाँकि बाशम ने भाव को स्वाभाव के पर्याय के रूप में लिया। नियति के अधीनस्थ स्वभाव (जो की बहुत सारी शर्तो का समुच्चय) और प्रत्येक वस्तुओ की लाक्षणिकता ही वृद्धि, विकास और पुनर्जन्म को नियंत्रित करते हैं (बाशम, 1951:226). यानी कि स्वाभाव ही प्रत्येक वस्तु को एक दूसरे वस्तु से अलग करता है और उनकी प्रकृति को बदला नहीं जा सकता है, इसलिए मनुष्यों के कर्म निरर्थक है । यहाँ पर नियति और स्वभाव एक दूसरे के पूरक दिखते हैं । यहाँ पर नियति को सामाजिक तथ्य (दुर्खिम 2014[1895]) माना जा सकता है क्योंकि आजिवकों ने नियति को एक बाह्य कारक के रूप में समाज के सभी मनुष्य पर

सामान्य रूप से बाध्यकारी माना । इस तरह के सिद्धांत ब्राह्मणवादी सिद्धांतो के खिलाफ थे क्योंकि वर्ण व्यवस्था में चारो वर्णों की प्रस्थिति अलग-अलग थी । एक बहुत बड़ा हिस्सा शुद्र और अतिशूद्र (जो वर्ण व्यवस्था के बाहर थें) समाज के सबसे निचले पायदान पर थें । चट्टोपाध्याय (2013:27) तर्क देते हैं कि मानव सामाज दो हिस्सों में बटा हुआ था एक जो विशेषधिकारयुक्त वर्ग जो की अल्प संख्या में था और दूसरा वंचित वर्ग जो की बहुसंख्यक थें और ज्ञान और सत्ता मुख्यतः पहले वाले वर्ग के पास था। ऐसे में आजीवक जैसे दर्शन का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है । नियति के आगे सारे मनुष्य बराबर हो गए चाहे वे किसी भी वर्ण के हो । न ही कोई द्विज न हीं कोई शुद्र नियति से बाहर है और नियति कर्मो से भी नहीं बदला जा सकता है ।. इसलिए वर्णाश्रम आधारित कर्म के सिद्धांत भी मनुष्य के नियति को नहीं परिवर्तित कर सकते हैं। कही न कही ये सिद्धांत उस समय शासक और पुरोहित वर्ग के खिलाफ थे । ब्राह्मण परंपरा में वेदों को सर्वोपरि स्थान दिया गया और इस अपौरुषेय माना गया । और वेदों में निर्देशित कर्म कांड मनुष्यों के उन्नति की लिए अनिवार्य माना गया । आजिवकों ने वेदों की सत्ता को भी नकार दिया क्योंकि कोई भी कर्म कांड और वेद निर्देशित संस्कार मनुष्य के नियति को नहीं बदल सकते है । स्वभावादियों और नियतिवादियों की इस समूह को अक्रियावादी कहा गया जो की पुरिस्कार (कार्य) की उपादेयता और प्रभाशिलाता में विश्वास नहीं करते है (बाशम,1951:226) । आजिवकों द्वारा कर्म के सिद्धांत को नकारने का एक ऐतिहासिक कारण भी दिखायी देता है। छठी शताब्दी इसा पूर्व कर्म के सिद्धांत का आशय यह था कि वर्ण विभाजित कार्यों को ही भूत और भविष्य से जोड़ दिया गया था, जिसमें कुछ भी बदलाव लगभग असम्भव था । ऐसे में कर्म के चक्रीय सिद्धांत से बाहर निकालने का रास्ता ये हो सकता था कि कर्म के सिद्धांत की आवश्यकता को ही नकार दिया जाय और सबको एक ही सिद्धांत नियतिवाद के अन्दर लाया जाय। इससे यह भी हुआ की कर्म का चक्रीय सिद्धांत जो की केवल द्विज वर्णों के लिए लाभदायक था उसको भी चुनौती मिली । और नियति के आगे पुरोहित वर्ग द्वारा निर्मित सारे सिद्धांत व्यर्थ साबित हुए ।

संगति- हेओर्नले ने इसको परिवेश के रूप में व्याख्यायित किया है जबकि बाशम ने इसका अनुवाद भाग्य या अवसर के रूप में किया है. नियतिवादियों के लिए कार्य कारण सिद्धांत भ्रामक है. संगति को अवसर के रूप में लिया जाय तब भी यह कहा जा सकता है कि वर्ण व्यवस्था इतना कठोर हो गया था कि सभी वर्णों के लिए उन्नति और विकास के लिए समान अवसर उपलब्ध नहीं थें। शुद्र वर्ण जो की बहुत ही दयनीय स्थिति में जाने लगे थे और चारो वर्णों में असमानता इस कदर बढ़ गयी थी की लोगों के मन में एक तरह का वितृष्णा उत्पन्न हो गया था । वेद निर्मित कर्मकांड लोगो की आर्थिक स्थिति को भी गर्त की तरफ ले जा रहे थे । और उन वर्णों ने जिन्होंने कि ब्राह्मण धर्म को अभी भी स्वीकार नहीं किया था । उनके आगे बढ़ने अवसर बिलकुल ही सीमित थें । अतः नियतिवादियों ने इस हताशा की स्थिति में क्रिया-कारण सिद्धांत को भी अस्वीकार कर दिया ।

भाव – स्वाभाव का सिद्धांत बहुत ही रुचिकर है क्योंकि यह प्राकृतिक नियमो की आधुनिक संकल्पना का प्रारंभिक प्रत्याशा था (चट्टोपाध्याय, 2012 :53) । चट्टोपाध्याय ने स्वाभाव के सिद्धांत को आस्तिकवादी अवधारणा के विरोध में देखा और इसकी महत्ता को धर्म और विज्ञान के मूलभूत विरोधाभास में समझने के लिए महत्त्वपूर्ण माना । ईश्वरवाद और स्वभाववाद को क्रमशः 'ईश्वर का सिद्धांत 'और 'प्रकृति का सिद्धांत' एक दूसरे के विपरीत विचारधारा का संघर्ष माना । इनके बीच के संघर्षो को चट्टोपाध्याय ने सीधा से अलौकिक और प्राकृतिक हेतुता और दो नजरियों धर्म और विज्ञान के अंतर का विवाद माना । स्वभाव को प्रकृतिवाद माना और लोकायत से जोड़कर देखा । आजीवकों के सिद्धांतो से कभी-कभी जीवन की अर्थहीनता का भी बोध होता है जिसको पाश्चात्य दार्शनिक कामू से भी विचारों से जोड़ा जा सकता है । डेविड बेल्लोस, कामू (2004) के प्रस्तावना में लिखते है कि इस अर्थहीनता का अभिप्राय जीवन की निरर्थकता, विवेक शून्यता होना है जो किसी भी तरह के धार्मिक विश्वासों की अनुपस्थिति है । कामू तर्क देते हैं कि केवल ईश्वर ही पूर्ण रूप से जीवन को अर्थवान बना सकता है और जैसा की इस विश्व में किसी भी ईश्वर, क्रिया और अवस्थाओ का 'परम/अंतिम' अर्थ नहीं है और इसी वजह से कामू का मानना था की जीवन अर्थहीन है ।

निष्कर्ष

जैन और बौद्ध सम्प्रदायों की तरह ही आजीवक भी वैदिक और ब्राह्मण कर्मकांड और परंपरा को अस्वीकार करते हुए अस्तित्व में आया । आजीवकों ने उस दार्शनिक खालीपन को दूर किया जो लोकायतों, जैनों और बौद्धों ने छोड़ दिया था. जैन और बौद्ध धर्म दोनों ही संप्रदायों ने आजीवकों को अपने प्रत्दवंदी के तौर पर देखा । मक्खलि गोसाल और वर्धमान महावीर की प्रतिद्विन्दिदिता का उल्लेख कई सारे जैन स्रोतों से पता चला है । मक्खाली गोसल को गौतम बुद्ध ने मोघ पुरिसो (मुर्ख पुरुष) कहा है. बाशम (1951) ने तो यहाँ तक लिखा है की आजीवकों का प्रभाव इतना लोगो में बढ़ गया था कि बौद्ध धर्म ने अपना सबसे बड़ा प्रतिस्पर्धी जैनियों को नहीं बल्कि आजीवकों को माना । बावजूद इसके उनके भारतीय दर्शन में योगदान को कमतर नहीं आंका जा जा सकता है । उनका केवल महत्त्वपूर्ण योगदान यह नहीं है कि उन्होंने नियतिवाद को सार्वभौमिक सिद्धांत के रूप में स्थापित किया बल्कि उन्होंने मनुष्यों और नवोदित राज्यों की अनियंत्रित शक्ति की इच्छा,

उनकी सीमा और प्रकृति की महत्ता को भी समझाने की भरपूर चेष्टा की। आज भी जबकि कई तरह के प्राकृतिक आपदाओं जैसी की सुनामी, बाढ़, सुखा, जिका वायरस से पूरी दुनिया त्रस्त है ऐसे में आजीविकों का नियतिवाद मनुष्य की सीमओं को रेखांकित करता है।

सन्दर्भ सूची:

1. कामू, अ. (2004). द प्लेग, द फाल, एक्ज़ैल एंड द किंगडम एंड सिलेक्टेड एस्सेज़. एवरीमैंस लाइब्रेरी.
2. कुमार, श. (2013). वैशेषिक दर्शन में पदार्थ निरूपण (पुनर्मुद्रित संशोधित द्वितीय संस्करण ed.). नई दिल्ली: डी. के. प्रिंटवर्ल्ड(प्रा.) लि.
3. चट्टोपाध्याय, द. प. (2012). इंडियन अथेइज्म अ मार्क्सिस्ट एनालसिस. नई दिल्ली, इंडिया : पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस.
4. चट्टोपाध्याय, द. प. (2013). लोकायत प्राचीन भारतीय भौतिकवाद का दर्शन (पहली आवृति ed.). (ब. शर्मा, Trans.) नई दिल्ली, इण्डिया: राजकमल प्रकाशन.
5. चट्टोपाध्याय, द. प. (2015). इंडियन फिलोसोफी अ पोपुलर इंट्रोडक्शन (प्रथम संस्करण 1951 ed.). नई दिल्ली: पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस.
6. चट्टोपाध्याय, द. प. (2013). रिलिजन एंड सोसाइटी (रिपब्लिशड सं.). दिल्ली, इण्डिया: आकार बुक्स.
7. दुर्खाइम, ए. (2014(1885)). द रूल्स ऑफ़ सोशियोलॉजिकल मेथड्स एंड सिलेक्टेड टेक्स्ट ऑन सोसियोलोजी एंड इट्स मेथड. (स. लुक्स, Ed.) फ्री प्रेस.
8. बरुआ, ब. एम. (1921). अ हिस्ट्री ऑफ़ प्री- बुद्धिस्टिक इंडियन फिलोसोफी. कैलकटा: यूनिवर्सिटी ऑफ़ कलकत्ता.
9. बाशम, ए. एल. (1951). हिस्ट्री एंड डोक्ट्रिंस ऑफ़ द आजिविकाज अ वैनिश्ड इंडियन रिलिजन (फर्स्ट ed.). नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशेर्स प्रा. लि.
10. सिंह, य. (2011). डिक्शनरी ऑफ़ पाली-संस्कृत-हिंदी-इंग्लिश. नई दिल्ली: डी. के. प्रिंटवर्ल्ड (प्रा.) लि.